REVIEW OF RESEARCH

स्त्री मुक्ति का सपना और उपभोक्तावाद

श्री.सिद्धेश्वर भिमाशंकर कोणदे

ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 8 | MAY - 2019

प्रस्तावना

आधुनिकता की यूरोपीय परिभाषा ने स्त्री घोष शोषण को नया रूप दिया है। स्त्री मुक्ति का प्रश्न स्त्री तक सीमित न रहकर संपूर्ण मानवता की मुक्ति का की अनिवार्य शर्त है। साठ के दशक में पुरुष वर्चस्ववाद की सामाजिक सत्ता और संस्कृति विरुद्ध उठ खड़े हुए स्त्रियों के प्रबल आंदोलन को नारीवादी आंदोलन का नाम दिया गया। वस्तुतः नारी आंदोलन एक राजनीतिक आंदोलन है जो स्त्री की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्वतंत्रता का पक्षधर है। स्वतंत्रता के छह दशक बाद भी स्त्रीमूलक प्रश्न ज्यों की क्यों बने हुए हैं। औरत पर आर्थिक, सामाजिक उत्पीड़न अपेक्षाकृत अधिक घरे व्यापक, निरंकुश और संगठित रूप में कायम हैं। बीसवीं सदी जिसे बौद्धिक क्रांति या विस्फोटक विद्रोह की सधी माना जाता है, मैं यह प्रतिस्थापित किया जाने लगा कि स्त्री भी वह सब करने में समर्थ है जिनके एकमात्र करता होने की पुरुष स्वयं को श्रेष्ठ तथा उदास प्रतिपादित करता रहता है। यूरोप की बयार ने शिक्षित वर्ग की सोच में एक नई ताजगी पैदा की और वह भी अपने यहाँ की आधी आबादी की स्वाधीनता पर सोच विचार करने लगा। महिलाओं ने अपने अधिकारों के लिए संगठित होने और सामूहिक रूप से अपनी बात रखने की शुरुआत की। स्त्री की जीवन स्थितियाँ जिस तेजी से बदली है उसी तेजी से हमारा भौतिक दृश्य भी बदलता है। घर से निकलकर विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सार्थक भागीदारी प्रदर्शित करने में स्त्रीयाँ संलग्न है। उनको प्राप्त हो रही आर्थिक स्वाधीनता जो उनमें आत्मविश्वास के साथ महत्वाकांक्षा को बढ़ावा दे रही है वहीं उन्हें अपने से पिछड़ी बहनों को भी आगे लाने के लिए प्रेरित करती है।

स्त्री बाजार के हाथ की कठपुतली बन गई है। पारंपरिक जीवन स्थितियों से विलग वह जिस अवस्था तक पहुँच रही है वहाँ उसे स्वेच्छाया चुनाव के विकल्प तो मिल रहे हैं पर वहाँ उसे मनमानी करने की आजादी नहीं है। पहले वह पितृप्रधान परिवार-समाज की अधीनता में रहने को विवश थी और वर्तमान में उपभोक्ता संस्कृति उसे अपनी डुगडुगी पर नचा रही है। ग्लैमर और आत्मविश्वास से लबरेज आज की औरत को बाजार अपनी शर्तों पर आर्थिक स्वतंत्रता देता है। बाजार को उसकी प्रतिभा की अपेक्षा दैहिक सुंदरता अधिक मुनाफे वाली लगती है अतः मीडिया उसका इस्तेमाल सर्वत्र एक हसीन गुड़िया की मानिंद करने लगा है। स्त्री को लगता है कि वैश्विक पूँजीवाद के बदले समीकरणों में उसका गणित ऊँचा उठता है परंतु इससे तरह बाजारों से प्रश्न और परोक्ष तरीके से कमतर करता जा रहा है। तंत्र उसकी स्वतंत्रता को मुँह चिढ़ा रहा है। बाजार पहले आर्थिक विपन्नता बख्शती है तत्पश्चात उसके लिए शोषण का रास्ता सरल हो जाता है। प्रभा खेतान उपभोक्ता पर बाजार की चालाकी पर टिप्पणी करते हुए लिखती है। "बाजार के केंद्र में एक सशक्त उपभोक्ता के रूप में यदि आप है, तो बाजार की नजर आप पर नहीं आपके पर्स पर है। रुपए निकालकर मगर सोच समझकर खर्च कीजिए।"

आज के उपभोक्तावादी दौर में कवि मन नारी की जगह खोजता हुआ स्त्रीगत परंपराओं को कोसता है और उन व्यवस्थाओं पर भी प्रश्नचिन्ह लगाता है जो नारी को एक प्रोडक्ट बनाने में लगी है। अभय कुमार दुबे स्त्री परम पर परतंत्रता की परतें उखाडते हुए लिखते हैं- "फ्रांसीसी क्रांति के जमाने से ही यह सवाल अनसुलझी शक्ल के मुक्तिकर्मियों का मुँह चिढ़ा रहा था कि स्वतंत्रता, समानता और मातृत्व के नारे का औरतों के लिए क्या अर्थ है। वह कहते हैं की फ्रांस की क्रांति लिंग के लिहाज से निश्चित रूप से एक पुरुषवादी क्रांति थी, लेकिन उससे जुड़े सैद्धांतिकता में नारी मुक्ति की संभावनाएँ थी। भोगपरक समाज में स्त्री को स्वतंत्रता का झांसा देकर उसकी मुक्ति की बात बेमानी हो चली है। सदियों से गुफा के अंधकार में सिमटी स्त्री के लिए मुक्ति का अर्थ उसकी उस कृत्रिम पहचान से मुक्त होना चाहिए। स्त्री को उसके लिंग से विलग कर देखे जाने के अभ्यस्त नहीं। स्त्री पहले मनुष्य है तत्पश्चात कुछ और। तमाम हो हल्ले के बावजूद स्त्री मुक्ति की स्पष्ट अवधारणा तो दूर वैचारिक बहसे उसकी देह पर सिमट जाती है। मीडिया और पूँजीवाद उसे उड़ान भरने को उन्मुक्त आकाश तो दे रहे परंतु अपने लासे की लगधी भी उतनी ही ऊँची करते जा रहे ताकि उसे चारों खाने चित कर सके। ऐसी बेईमान सोच उसे भला स्त्री की मुक्ति कैसे होगी?

जागतिकीकरण के फलतः स्त्री को जो मुक्ति मिली उसमें व्यवस्था की चाल का अन्वेषण कविताएँ करती है। दरअसल विश्वयान के बावजूद पुरुष अपनी सत्ता बनाए रखने की जुगत में लगा रहता है जिससे नारी स्वतंत्रता, समता पर दिमाक लगा रही है। व्यवस्था स्त्री को अपनी संरचना में मुरझाए रखना चाहती है उसे कतई गँवारा नहीं कि उसकी रचना प्रश्नित की जाय। जीवन के केंद्र में होते हुए भी स्त्री सामंती मानसिकता और उपेक्षा का शिकार है। सामाजिक मनोविज्ञान की दीवार में स्त्री पर नैतिक दबाव की शालीन परिस्थितियाँ जो स्त्री की शारीरिक तथा मानसिक यातना का कारण बनती है, उसके खिलाफ स्वतंत्र थी अपने विमर्श को रखती है। स्त्री मुक्ति के सही मायने, पराधीनता की बेड़ियों से स्त्री मुक्ति से है जिनमें पितृसत्तात्मक पुरुष वर्चस्ववादी, धर्म और धर्म शास्त्र, सम्मत सामाजिक संरचना में उसे जकड़ा गया है। रचनाएँ यह खोलकर रखती है कि वैश्वीकरण समाज में स्त्री मुक्ति के जो जुमले गढ़े जाते हैं दरअसल वे औरत को और अधिक उलझाने वाली होती है। विडंबना है कि स्त्री अपने इस नए शोषण को नहीं समझ पा रही है। औद्योगिक समाज में घर के बाहर ऑफिस, गली, नुक्कड़ हर कहीं उसे ललचाए नजरों से देखा जाता है।

औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप औरत को उत्पादन श्रम के क्षेत्र में प्रवेश मिला और यहीं से औरत की स्वाधीनता के दावे को आर्थिक आधार मिला, साथ ही विरोधी खेमे और अधिक आक्रमांक हो गए। अचल संपत्ति का प्रभाव कुछ हद तक घटने पर भी बुर्जुआ पारिवारिक एकता में निजीकृत संपत्ति को प्रश्रय देने वाली पुरानी नैतिकता से चिपका रहा। औरत की स्वतंत्रता और स्वाधीनता पुरुषों की आँखों की किरकिरी बन गई उसको वायरस वापस घर के दायरे में लौटने को कहा गया। यहाँ तक कि मजदूर वर्ग के पुरुषों ने भी औरत की स्वाधीनता पर बंधक लगाने शुरू किए, क्योंकि वह औरत को अपना खतरनाक प्रतियोगी समझने लगे। प्रतियोगिता का एक कारण यह भी था कि औरत पुरुषों की अपेक्षा कम तनख्वाह में काम करती थी। वर्तमान व्यवस्था में महिलाएँ घर और बाहर दोनों जगह फिट होने लगी है। पुरुष के दोनों हाथों में लड्डू है। औद्योगिक करण से रचे-बसे नए समाज में संयुक्त परिवार परंपरा का स्खलन हुआ है। महँगाई और दैनंदिन आवश्यकताओं के बढ़ने के साथ ही औरतों ने चूल्हे चौके के बाहर अपनी उपस्थिति दर्ज करा कर आर्थिक स्थिति में योगदान दिया है। तथापि आर्थिक रूप से पूर्ण स्वावलंबी, उँचे पद पर कार्यरत अथवा साधारण स्त्री जो केवल घर परिवार को समर्पित है जब अपना विश्लेषण करती है तो पाती है कि स्त्रियों के प्रति विचार और व्यवहार में दकियानूसीपन अभी भी विद्यमान है। ज्ञान परंपरा तथा इतिहास के चालक तत्वों के रूप में सदैव ही पुरुष आगे रहा इसीलिए जाहिर सी बात है कि सभी मानक भी उसी ने तय किए जिन्हें सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया गया। पुरुष जानता है कि अपने में फँसा कर उन्हें किसी तरह अपने लिए तैयार किया जा सकता है।

पुरुष जिस दिन यह विश्वास करें कि स्त्री का भी बराबरी का हक है, वह स्त्री पराधीनता को शर्तहीन सम्मान देकर धन्य होगा। जिस दिन वह अपने पुरुषजनित नृशंसता था को छोड़कर इंसान बनेगा, माननीय बनेगा, प्रेम में स्त्री का स्पर्श करेगा, जिस दिन प्रेम के साथ श्रद्धा भी होगी, उसी दिन स्त्री पुरुष में सच्चा संबंध होगा। हम एक ऐसे समाज में जी रहे हैं जो पूँजीवादी ही नहीं पुरुष वर्चस्ववादी भी है। यह सही है कि स्त्री आदम जात का आधा हिस्सा है, पुरुष के

समान हर क्षेत्र में स्त्री अपनी भागीदारी निभा रही है। वह कमर कसकर कम आती है परंतु सामान हैसियत उसे अब भी हासिल नहीं है। 33 फ़ीसदी महिला आरक्षण की बात करने वाले करने वालों की नियत पर शक होता है। अलग-अलग देश और अलग-अलग समुदाय की स्त्रियों की अलग-अलग समस्याएँ हैं और अलग-अलग मुक्ति के रास्ते हैं। दर्द के चेहरे अलग-अलग हो सकते हैं लेकिन इसका चेहरा एक सा होता है और वही टीस है आत्म निर्णय के अधिकार का होना। इस अधिकार का सीधा संबंध नारी मुक्ति से है। चाहे वह किसी देश, वर्ग और समुदाय की स्त्री हो। स्त्री विमर्श-पुरुषों के खिलाफ नहीं बल्कि उस सोच के खिलाफ है, जो स्त्री को इस तरह जीने को विवश करती है। नारी मुक्ति के लंबे संघर्ष के बाद फिलहाल स्थिति यह है कि दुनिया की 98 फ़ीसदी पूँजी और 99 फ़ीसदी बड़े-बड़े संस्था और बहु राष्ट्रीय कंपनियों के प्रबंधन और निर्णय लेनेवाले पदों पर पुरुष का अधिकार है। संसार में निरक्षर जनता का तीन चौथाई भाग स्त्रियों का है। एशिया में 100000 स्त्रियाँ जबरन वेश्यावृत्ति के लिए ढकेल दी जाती है। भारत में 5000 स्त्रीयाँ दहेज के लिए मार दी जाती है। बलात्कार, घरेलू हिंसा और यौन शोषण का शिकार स्त्रियों की एक अलग ही जमात है। भ्रूण हत्या द्वारा उससे जन्म लेने का हक भी छीना जा रहा है। 2008 की जनगणना के अनुसार देश में हजार पुरुषों पर 914 स्त्रियाँ रह गई है। वर्तमान परिवेश में मीडिया बिकाऊ साबित हुआ है उसकी दलील है कि जो खबरें बिकती है उन्हें ही हम भेजते हैं। आखिर वह कौन सी मानसिकता है जिसके तहत ये खबरें बिकती है। यह सारी बातें सिद्ध करती है कि नारी मुक्ति को वर्तमान भोग पर समाज में लंबी दूरी तय करनी है, जिसमें सही दिशा की तलाश शामिल है।